Educational Administration: Theory and Practice
2023, 29(1), 755-764
ISSN:2148-2403
https://kuey.net/

Research Article

हिंदी के दलित लेखकों की कहानियों में विद्रोह

प्रिया यादव[1]*, डॉ. मनोज कुमार सिंह[2]

[1]*शोध छात्रा, हिंदी विभाग, महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी, लखनऊ
[2]सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी, लखनऊ

उद्धरण: प्रिया यादव और अन्य. (2023), हिंदी के दलित लेखकों की कहानियों में विद्रोह, *Educational Administration: Theory and Practice*, *29*(1), 755-764, Doi: 10.53555/kuey.v29i1.8958

लेख जानकारी

सारांश

शिक्षा, संपत्ति, संसाधन, सत्ता और सम्मान से बहिष्कृत बेदखल दलितों के जीवन-संघर्षों से प्रेरित दलित साहित्य का सृजन सवाल से शुरू होता है। वर्ण-व्यवस्था और जातिप्रथा का मनुष्य जीवन से संबंध क्या है? वर्ण-व्यवस्था और जातिप्रथा समाज को कैसी शिक्षा देती है? वर्ण-व्यवस्था और जातिप्रथा को न्यायोचित ठहराने के लिए द्विज विद्वानों ने किन तर्कों का आधार लिया है? क्या बगैर वर्ण-व्यवस्था के समाज का कोई अस्तित्व नहीं है? इन सवालों का अध्ययन - विश्लेषण करने पर दुनिया के इतिहास में वर्ण व्यवस्था और जातिप्रथा को जन्म देने वाली द्विज कौम में बौद्धिक क्षमताओं की दुर्बलता कहिए या छल-कपट की पराकाष्ठा साबित होती है। शोध से यह बात साफ हुई है कि वर्ण-व्यवस्था व जातिप्रथा के कारण मनुष्य की पहचान अथवा योग्यता उसकी कार्यकुशलता से तय नहीं होती है, बल्कि उसका जन्म जिस जाति में हुआ है उस जाति की समाज में मनुस्मृति ने जो हैसियत तय की हुई है उसी के आधार पर निर्भर रही हैं। शरणकुमार लिंबाले के शब्दों में "दलित आंदोलन एक महायुद्ध है, तो दलित साहित्य एक महाकाव्य है।" दलित साहित्य सदियों से अस्पृश्य, शोषित, उपेक्षित, वंचित मनुष्यों की यातना, संघर्ष और उनके स्वप्न के अनुभवों की आत्मस्वीकृतियाँ है। वर्ण-व्यवस्था और जातिप्रथा के इस नये संस्करण में दलितों का अस्तित्व और उनकी अस्मिताओं के सवाल बेहद जटिल बनते दिखाई दे रहे हैं। लेकिन अधिकांश दलित साहित्यकार इस आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण का समर्थन करते दिख रहे हैं। हिंदी की दलित कहानियों में इन सवालों को विचार-विमर्श का विषय बनाया गया है।

परिचय

दलित साहित्य की संकल्पना को सर्वप्रथम सन् 1948 में 'महाराष्ट्र दलित साहित्य संघ' के नाम से स्थापित किया गया। सून 1958 में प्रथम दलित साहित्य सम्मेलन मराठी भाषी क्षेत्र महाराष्ट्र में संपन्न हुआ। दलित साहित्य की पहली पीढ़ी ने सन् 1972 में 'दलित पैंथर' के नाम से दलित युवा साहित्यकारों का संगठन स्थापित हुआ । दलित पैंथर का संगठन बेहद आक्रामक और विवादित दिखाई देता है। दलित साहित्य और दलित आंदोलन एक-दूसरे के पूरक हैं।

दलित साहित्य के अंतर्गत दलित कहानी का उभार एक सशक्त विधा के रूप में हो रहा है। हिंदी दलित साहित्य का उदय लगभग अस्सी के दशक से आरंभ होता है। विगत कई दशकों से हिंदी दलित कहानी अपनी सृजनधर्मिता के साथ आगे बढ़ रही है। इन बीते हुए दशकों में हिंदी दलित कहानी ने स्वयं को समृद्ध किया है। निरन्तर नए-नए दलित कहानिकारों की उपस्थिति से हिंदी दलित कहानी का तेजी से विकास भी हो रहा है। आरंभ में दलित कहानीकारों का स्वर एकमुखी था । दलित कहानी के केंद्र में ब्राह्मणवादी व्यवस्था ही निशाने पर थी। तमाम दलित कहानीकारों ने इस व्यवस्था का पुरजोर विरोध किया था। समाज में जाति व्यवस्था के कारण दलित समाज किस प्रकार भेद और शोषण का शिकार बना रहा, यह स्थापना ही दलित कहानी का मूल ध्येय रहा है। दलित कहानी का दूसरा पड़ाव वहाँ से शुरू होता है, जब इसका एकमुखी स्वर टूटता है और तमाम नए स्वर यहाँ आकर जुड़ते हैं। अनेक दलित लेखक अपनी कहानियों में दलित समाज को आड़े हाथों लेते हैं और दलित समाज में व्याप्त ब्राह्मणवाद का खुलकर चित्रण करते हैं। इसके साथ-साथ दलित समाज की कुरीतियों, शिक्षित दलितों की अवसरवादिता, शिक्षित दलितों का अपने समाज से कटना, उनकी जाति से पलायन इत्यादि तमाम पहलुओं का चित्रांकन दलित कहानी में हुआ है। दलित कहानी में मौजूद यह बहुमुखी स्वर ही दलित कहानी के विकास और पहचान का परिचायक है । विभिन्न क्षेत्रों से आज दलित कहानीकार अपने समाज की समस्याओं को उद्घाटित कर रहे हैं। दलित स्त्री लेखिका भी इस दिशा में संलग्न है और दलित स्त्री की समस्याओं को प्रचुरता से समाज के सामने रख रही हैं। कथ्य, भाषा शैली की दृष्टि से भी दलित कहानी समृद्ध हुई है, बावजूद इसके इस दिशा में अभी और अधिक सचेतन होने की आवश्यकता बनी हुई है। अधिक-से-अधिक संग्रह निकालने की दौड़ में कुछ बेहद कमजोर कहानियाँ भी आ रही हैं, इस दृष्टि से भी सचेत होने की जरूरत है। आज बड़ी तादाद में दलित कहानियाँ आ तो रही हैं, फिर भी श्रेष्ठ दलित कहानियों की संख्या अभी बहुत कम है।

दलितों की यातना, उनके संघर्ष और सपनों की यह विस्फोटक भाषा उनके जीवन की तल्ख सच्चाइयों से संबद्ध है। साहित्य की दुनिया में सहज, सरल और साधारण बोलचाल की भाषा में बेबाक और सटीक अभिव्यक्ति की अपनी एक विशेष, रोचक, अद्भुत

कॉपीराइट © 2023 लेखक(लेखकों) द्वारा और kuey द्वारा लाइसेंस प्राप्त। यह क्रिएटिव कॉमन्स एट्रिब्यूशन लाइसेंस के तहत वितरित एक ओपन एक्सेस आलेख है, जो किसी भी माध्यम में अप्रतिबंधित उपयोग, वितरण और पुनरुत्पादन की अनुमति देता है, बशर्ते मूल कार्य उचित रूप से उद्धृत किया गया हो।

और विश्वासनीयता की पहचान दिखाई देती है। सामाजिक बदलाव के लिए अपनी वेदना, विरोध और विद्रोह को सही दिशा में, संवेदनशील और सार्थक रूप में, सही और सटीक शब्दों में अभिव्यक्त करने की कला को दलित लेखकों ने अपने अनुभवों से अर्जित किया है।

डॉ.अंबेडकर ब्राहम्णवाद की व्याख्या करते हुए ब्राह्मण वर्ग तथा ब्राह्मणी व्यवस्था को भिन्न-भिन्न रूपों में देखते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया है--"मैं ब्राह्मणों के अधिकारों सुविधाओं के विरुद्ध नहीं हूँ जो उन्हें समुदाय के रूप में प्राप्त है, मैं इन अर्थों में ब्राह्मणवाद को परिभाषित नहीं कर रहा हूँ। ब्राह्मणवाद से मेरा आशय स्वतंत्रता, समानता तथा भातृत्व की भावना से विहीन होने से है । ब्राह्मण यद्यपि इसके सर्जक है लेकिन आज इस भावना का अस्तित्व सभी वर्गों में मौजूद है। यहां तक कि ब्राह्मणवाद आर्थिक क्षेत्र को भी प्रभावित करता है। निम्न जातियों में तो यह और भी अधिक सुद्दढ़ रूप में मौजूद है।"[1] [द टाइम्स ऑफ इंडिया 14 फरवरी 1938 डॉ. अंबेडकर निम्न जातियों में व्याप्त ब्राह्मणवाद को नजरअंदाज नहीं करते। अधिकतर दलित कहानीकारों ने निम्न जातियों में व्याप्त ब्राह्मणवाद को अपनी कहानियों का विषय बनाया है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि दलित चिंतन अंबेडकरी विचारधारा से ही तमाम किस्म की वैचारिक ऊर्जा ग्रहण करता है। डॉक्टर अंबेडकर ब्राह्मणों के विरुद्ध नहीं थे बल्कि उनका घोर विरोध ब्राह्मणवादी व्यवस्था से था जो कि उनके उक्त वक्तव्य से स्पष्ट होता है। डॉ. अंबेडकर ब्राह्मणवादी व्यवस्था का समूल नाश करना चाहते थे।

हिंदू धर्म के विरुद्ध डॉक्टर अंबेडकर की एक प्रमुख आपत्ति यह थी कि यह चतुर्वर्ण- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के माध्यम से जाति व्यवस्था और छुआछूत का समर्थन करता है। डॉक्टर अंबेडकर का जन्म महाराष्ट्र में परंपरागत रूप से अछूत माने जाने वाली महार जाति में हुआ था । उन्होंने आजीवन छुआछूत के विरुद्ध संघर्ष किया । अंततः अपने जीवन के अंतिम खंड में उन्होंने औपचारिक रूप से हिंदू धर्म को त्याग कर बौद्ध धर्म अपना लिया। 'नासिक मंदिर प्रवेश सत्याग्रह के असफल होने पर उन्होंने सार्वजनिक तौर पर यह घोषणा की थी कि अपने जन्म पर तो उनका नियंत्रण नहीं था लेकिन वह हिंदू के रूप में नहीं मरेंगे। डॉ अंबेडकर को यह महसूस होने लगा था कि हिंदू धर्म के दायरे में दलितों को न्याय नहीं मिल सकता ।

ब्राहम्णवाद के प्रति विद्रोह

सन् 1936 में डॉ. अंबेडकर की जाति का विनाश" (Annihilition of caste) प्रकाशित हुई जिसमें उन्होंने हिंदू धर्म को छोड़ने के अपने संकल्प को दोहराया । अंततः1956 में उन्होंने बौद्ध धर्म को अपना लिया। डॉ. अंबेडकर के अनुसार- "हिंदू धर्म में ईश्वर में विश्वास है बौद्ध धर्म में कोई ईश्वर नहीं है, हिंदू धर्म आत्मा में विश्वास रखता है बौद्ध धर्म के अनुसार आत्मा नहीं है, हिंदू धर्म चतुर्वर्ण और आत्मा में विश्वास रखता है बौद्ध धर्म में जाति व्यवस्था और चतुर्वर्ण के लिए कोई जगह नहीं है। [2]डॉ. अंबेडकर ने 'फिलॉसफी ऑफ़ हिंदुइज्म' और 'बुद्ध एंड हिज धम्मा' नामक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने तर्क सहित ब्राह्मणवादी व्यवस्था का कड़ा विरोध किया एवं बौद्ध धर्म का समर्थन किया

जाति का विनाश' (Annihilition of caste) में डॉ. अंबेडकर ने राय दी है- "जाति के उन्मूलन का वास्तविक उपाय अंतरजातीय विवाह ही है। उनके अनुसार जब "अंतरजातीय खानपान एवं विवाह सामान्य व्यवहार की बात हो जाएंगे तो जाति एक प्रभावशाली ताकत नहीं रहेगी। लेकिन इससे भी आगे बढ़कर डॉ. अंबेडकर कहते हैं कि "छुआछूत और जाति व्यवस्था को नष्ट करने के लिए उन धर्मग्रंथों और शास्त्रों की पवित्रता में लोगों के विश्वास को नष्ट करना जरूरी है जिनमें वर्ण व्यवस्था को मान्यता प्रदान की गई है और जिनके लिए जातिभेद की भावना को लोगों के दिमाग में बैठाया गया है"।[3]

'फिलोसोफी ऑफ हिंदुइज्म (philosophy of Hinduism) में डॉ. अंबेडकर ने न्याय या दूसरे शब्दों में समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की दृष्टि से हिंदू धर्म के बारे में विचार किया है। मनुस्मृति से कई उदाहरण देते हुए डॉक्टर अंबेडकर ने दिखलाया है कि वर्णाश्रम की ब्राह्मणवादी व्यवस्था मानवीय मूल्यों के पूरी तौर से विरुद्ध है। इसमें एक ही अपराध के लिए अलग-अलग वर्णों के लिए अलग अलग सजा बताई गई है। आश्रम व्यवस्था को सिर्फ ब्राह्मणों तक ही सीमित रखा गया है। आजीविका चुनने की स्वतंत्रता नहीं दी गई है। शूद्रों के लिए कहा गया है कि उनका जन्म ही ब्राह्मणों की सेवा के लिए हुआ है। शूद्रों को आर्थिक स्वतंत्रता और सुरक्षा से यहां तक की ज्ञान और शिक्षा से भी वंचित किया गया है। डॉक्टर अंबेडकर के अनुसार- "हिंदू समाज को जाति के आधार पर इस हद तक बांटा गया है कि अलग-अलग जाति के लोग न आपस में एक साथ मिल बैठकर खाते हैं, न आपस में एक-दूसरे से विवाह करते हैं। जन्म, मृत्यु, विवाह और भोजन जैसे सुख-दुख के महत्वपूर्ण मौकों पर उनमें आपस में कोई सहभागिता नहीं होती है। इस तरह हिंदू धर्म का दर्शन ही बंधुत्व के मूल्य के विपरीत है। [4]

डॉ. विमल कीर्ति के अनुसार 19वीं सदी में भारत में अंग्रेजों की नई शिक्षा प्रणाली की वजह से जो नया शिक्षित वर्ग पैदा हुआ, उनमें से कुछ लोगों का ध्यान भारतीय समाज की कुरीतियों की ओर गया। उन्होंनें उन कुरीतियों को दूर करने के लिए समाज सुधार, धार्मिक सुधार का काम अपने हाथ में लिया। उन्होंने अपने समाज की अमानवीय कुप्रथाओं के खिलाफ, धार्मिक सड़न के खिलाफ जागृति लाने की कोशिश की। इस काल को भारतीय नवजागरण का प्रारंभिक काल माना जाता है। इस नवजागरण आंदोलन का सूत्रपात बंगाल में सन् 1828 में राजा राममोहन राय द्वारा ब्रह्म समाज की स्थापना से हुआ। इसी के आसपास महाराष्ट्र में भी समाज सुधार आंदोलन शुरू हुआ जिसमें जांभेकर, दारोबा, पांडरंग, लोकहितवादी, भंडारकर आदि का बड़ा योगदान है। पंजाब और उत्तरी भारत में स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज का आंदोलन चलाया लेकिन उनकी सोच फुले की तरह बुनियादी समाज परिवर्तनकारी नहीं था। वे व्यवस्था परिवर्तन नहीं चाहते थे, बल्कि हिंदू धर्म और समाज में कुछ सुधार की बात करते थे। उनके सोच और कार्य की कई मर्यादाएँ थी। राजा राममोहन राय भी अपने को सतीप्रथा आदि पारिवारिक सवालों के आगे नहीं ले जा सके। उनका समाज सुधार का आंदोलन सामान्य जनों, किसानों, आदिवासियों, दलितों, पिछड़ों अर्थात् शूद्र अतिशूद्र की मुक्ति का आंदोलन कभी नहीं बन पाया। वह केवल शहरी लोगों खास तौर पर उच्च वर्गीय लोगों तक ही सीमित रहा। [5]

लेकिन जब हम जोतिबा फुले के बारे में सोचते हैं, तो हमें उनका कार्य और उनकी चिंतन धारा इन सबसे अलग दिखाई देती है। उन्होंने अपने कार्य और चिंतन की शुरुआत धर्म संस्था की आलोचना से शुरू की और फिर इसके खिलाफ व्यापक जनजागरण आनदोलन चलाया जो हमें 'ब्राह्मणों की चालाकी' (1869), 'गुलामगिरी (1873) आदि ग्रंथों में देखने को मिलती है।

फुले ने उन ब्राह्मणों पर जोरदार आक्रमण किया जो अधिकांशत: मध्यमार्गी,उदारवादी तथा समाज सुधारक थे और प्रार्थना समाज, ब्रह्म समाज, सार्वजनिक सभा तथा कांग्रेस जैसे संगठनों में शामिल थे। फुले की नजर में ये सभी संगठन आम आदमी को धोखा देने तथा उच्च जातियों के वर्चस्व को स्थापित करने के उद्देश्य से प्रेरित, अभिजात कोशिशें थी । जाति को वे दासता मानते थे। उनकी दृष्टि में जाति का अर्थ था गुलामी उनके अनुसार जातिकारण पराधीनता तथा दमन पर आधारित तो था ही, छल-कपट तथा धार्मिक विभ्रम भी इसके मूल में था।उच्च जातियों के लोगों ने जिस अवसरवाद को हिंदू धर्म का नाम दिया था, दरअसल छल-कपट उसका मूल स्वभाव था जिसको उन्होंने 'ब्राह्मणों की चालाकी (1869) में कविता के माध्यम से व्यक्त किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मणवादी व्यवस्था का विरोध करनेवाले दलित विचारक फुले,अंबेडकर के साथ-साथ ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने वाले बुद्धिजीवी भी इस व्यवस्था का पुरजोर विरोध करने वाले में शामिल हैं लेकिन दलित विमर्श का ढांचा समकालीन परिदृश्य में मूलतः अंबेडकर के दर्शन पर आधारित है। दलित लेखक अंबेडकर के अधूरे काम को पूरा करने की कोशिश में लगे हैं क्योंकि अंबेडकर का पूरा आंदोलन ही जाति व्यवस्था विरोधी था अर्थात् ब्राह्मणवादी व्यवस्था का विरोध ही अंबेडकर दर्शन का मूल स्वर था । दलित लेखक सूरजपाल चौहान लिखते हैं-"हिंदू धर्म और उसका वांड्मय ही दलित दुर्दशा के लिए उत्तरदायी है और जब तक दलित उसमें आस्था रखते हैं, जीवित रहते मुक्ति नहीं। [6]

दलित साहित्य ब्राह्मणवादी व्यवस्था का घोर विरोधी है। दलित साहित्यकार ब्राह्मणवादी व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाकर उसके मूल को समाप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। चूंकि दलित साहित्यकार अपनी तमाम वैचारिक ऊर्जा डॉ. अंबेडकर से ग्रहण करते हैं। अतः दलित साहित्यकार समाज में वयाप्त भेदभावपूर्ण व्यवस्था को समाप्त कर एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते हैं, जिसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व की पहचान उसके गुणों से हो, न की उसकी जाति से। दलित साहित्यकार मनुष्य की स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की भावना को सर्वोपरि मानता है। अतः वह अपनी रचनाओं में ब्राह्मणवादी व्यवस्था का पुरजोर विरोध करता नजर आता है। दलित साहित्यकार भाग्य, भगवान, स्वर्ग नर्क, मूर्ति- पूजा,बाहरी ढोंग आदि को नहीं मानता। वेद, पुराणों में लिखी गई अवैज्ञानिक बातों का विरोध करता है। इसी विरोध के कारण दलित साहित्यकारों की भाषा में आक्रोश है एवं इनके पात्र आक्रमणकारी रूप में चित्रित होते हैं। प्राय: सभी दलित कहानीकारों की कहानियों में ब्राह्मणवादी व्यवस्था के प्रति विद्रोह एवं आक्रोश व्यक्त है। इस धारा में ओमप्रकाश वाल्मीकि का स्थान महत्वपूर्ण है। इनके दो कहानी संग्रह 'सलाम' (2000) जिसमें कुल चौदह कहानियां संकलित है और 'घुसपैठिये' (2003) जिसमें कुल बारह कहानियां संकलित है। अपनी कहानियों में दलितों की व्यक्तिगत संवेदनाओं की बारीकियों को प्रस्तुत करने में वे सफल हुए हैं। इनकी कहानियों में अपनी अस्मिता को खोजते हुए दलितों का ब्राह्मणवादी व्यवस्था के प्रति विद्रोह एवं आक्रोश व्यक्त है 1

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में सामाजिक विषमता के चित्रण बहुलता के साथ विद्यमान है। मुख्यधारा के समाज के साथ दलित अब भी एकमेव नहीं हो पाया है। मुख्यधारा का समाज दलित के साथ सद्भाव, सदव्यवहार और समानता के तादात्म्य का ढोग तो करता दिखाई पड़ता है उनकी कहानियों में परंतु ऐन वक्त आने पर अपना असली रूप जाहिर कर देता है। समाज की यह मानसिकता वाल्मीकि की कहानियों में यत्र-तत्र बिखरी हुई मिलती है। वाल्मीकी की कहानियों का एक छोर शहरी परिवेश से ताल्लुक रखता है जिसमें दलित जातिगत भेदभाव का शिकार बनता है यहां दलित के साथ छद्म समानता की बात की जाती है। शहर में दलित के लिए एक अच्छे मोहल्ले तक में रहना दूभर हो जाता है, ऑफिस तक यह स्थिति बनी रहती है परंतु इस छद्म समानता का मुखौटा ज्योंहि उतरता है दलित खुद को जाति के शिकंजे में कसा महसूस करता है। 'सपना', 'कुचक्र', 'मुंबईकांड', 'प्रमोशन', 'कूड़ाघर', 'ब्रह्मास्त्र आदि इस तरह की कहानियां है। वाल्मीकि की कहानियों का दूसरा छोर गांव और देहात का परिवेश है जहां अब भी शोषण भेद खुल्लम-खुल्ला रूप में विद्यमान है। 'सलाम', 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ', 'गौहत्या', 'हत्यारे', 'यह अंत नहीं इत्यादि कहानियां इस कोटि में शामिल हैं।

'सपना' [7] कहानी सवर्णों की छद्म समानता पर आधारित है। दलित समुदाय से अपना काम निकालने वक्त सवर्ण समाज बड़ी-बड़ी डींगें हांकता है और काम पूरा हो जाने पर फिर असमानता का सिद्धांत अपना लेता है। सवर्ण समाज की इस साजिश का शिकार सपना कहानी का दलित पात्र गौतम होता है। मंदिर बनवाने के काम में जब सब पीछे रह जाते हैं तब गौतम और उसके साथी ही अपना खून पसीना बहाकर मंदिर निर्माण का काम करवाते हैं परंतु जब मंदिर बनकर खड़ा हो जाता है तब प्राण-प्रतिष्ठा के दिन मंदिर पर गौतम और उसके साथियों को बैठने की इजाजत नहीं मिलती। इस कहानी में छद्म समानताधारी भेद का चित्रण है जिसका विरोध गौतम और उसके सवर्ण मित्र ऋषि दोनों करते हैं, लेकिन ऋषि का विरोध अधिक तीव्र था।

गौतम ऋषि दोनों पक्के दोस्त हैं। गौतम शूद्र है और ऋषि ब्राह्मण लेकिन ऋषि गौतम से कोई भेद नहीं करता। नटराजन और कुछ लोग नहीं चाहते कि गौतम मंदिर की प्रथम पंक्ति में बैठे क्योंकि वह शूद्र है। इस कारण नटराजन और कुछ अन्य सदस्य मिलकर गौतम को पीछे बैठाने का प्रयास करते हैं। यह वही गौतम है जो मंदिर निर्माण में बढ़-चढ़कर मेहनत करता है, आज जब मंदिर निर्माण के बाद प्राण-प्रतिष्ठा की बात आई है तो उसे पीछे धकेला जा रहा है लेकिन ऋषि आकर गौतम का साथ देता है और नटराजन से लड़ पड़ता है जबकि ऋषि भी ब्राह्मण है। ऋषि नई पीढ़ी का लड़का है। अतः उसकी मानसिकता और नटराजन की मानसिकता में काफी अंतर है। दलितों की पुरानी पीढ़ी सवर्णों द्वारा बनाए गए नियमों परंपराओं को मानकर चलना चाहते हैं क्योंकि पुरानी पीढ़ी विद्रोह नहीं करना चाहती वे जल में रहकर मगरमच्छ से बैर नहीं करना चाहते, वहीं दलितों की नई पीढ़ी सवर्णों द्वारा बनाए गए नियमों परंपराओं को तोड़कर विद्रोह करती है जैसे कि सलाम' कहानी। सलाम कहानी में हरीश का दोस्त कमल है जो कि सवर्ण है। हरीश की तरह कमल भी नई पीढ़ी का लड़का है और गांव में प्रचलित जातिगत भेद को देखकर दंग है जहां उसे चाय की दुकान में दलित समझ कर चाय नहीं दिया जाता। गांव में कोई भी यह विश्वास ही नहीं करना चाहता कि किसी दलित के बारात में कोई सवर्ण भी आ सकता है। सब लोग कमल को दलित समझकर उसका तिरस्कार करते हैं। ऋषि के मन में भी जात-पात, ऊंच-नीच को लेकर

कोई गांठ या भेद बिल्कुल नहीं है इसलिए वह अपने दोस्त गौतम के लिए नटराजन व अन्य लोगों में अपना तीव्र विरोध दर्ज कराता है तथा प्राण प्रतिष्ठा के सारे आयोजनों को नष्ट भ्रष्ट कर देता है। इस कहानी में गौतम तो ब्राह्मणवादी व्यवस्था का विरोध करता ही है, दलितों के प्रति सकारात्मक दृष्टि रखने वाले सवर्ण पात्र ऋषि द्वारा भी वाल्मीकि जी ने सदियों से चली आ रही इस व्यवस्था का विरोध कराया है। वाल्मीकि की कहानी सपना में दलितों के प्रति सवर्ण युवक की सकारात्मक दृष्टि का चित्रण है। वाल्मीकि जी ने अपनी कहानियों में यत्र-तत्र सवर्ण युवा पीढ़ी के दृष्टिकोण में दलितों के प्रति बदलाव को चित्रित किया है लेकिन सपना कहानी वाल्मीकि जी की एकमात्र ऐसी कहानी है जिसमें एक ब्राह्मण व्यक्ति ऋषि व्यवस्था के खिलाफ विद्रोही हो उठता है।

'पच्चीस चौका डेढ़ सौ कहानी के वातावरण की पृष्ठभूमि गाँव पर आधारित है। सुदीप के पिता गांव के चौधरी से ब्याज पर उधार लेते हैं और चौधरी उन्हें ठग लेता है। क्योंकि वे अशिक्षित होते हैं, इसलिए चौधरी के फरेब को समझ नहीं पाते हैं। सुदीप बचपन से ही अपने पिता से पच्चीस चौका डेढ़ सौ सुनता आया था । वह पढ़-लिख कर समझ जाता है कि यह गलत है और अपने पिता को भी समझाने में कामयाब हो जाता है कि पच्चीस चौका एक सौ होते हैं। अंततः यह समझने पर कि चौधरी उन्हें लंबे समय तक मूर्ख बनाता रहा,उसकी आंखों पर एक अजीब सी वितृष्णा पनपने लगी और वे चौधरी को कोसने लगे-- "तेरे कीड़े पड़ेंगे चौधरी कोई पानी देने वाला भी नहीं बचेगा "। [8] यहां एक तरह से चौधरी के प्रति सुदीप के पिता के मन में मानसिक विद्रोह उत्पन्न होता है जिसके कारण वे चौधरी को कोसते हैं।

यह कहानी व्यवस्था के उस जघन्य रूप को सामने लाती है जिसमें दलितों की अशिक्षा और उनके सीधेपन का लाभ उठाकर उन्हें छला जाता है। ब्राह्मणवादी व्यवस्था में दलितों को शिक्षा से वंचित रखा गया। अंग्रेजी हुकूमत में जब शिक्षा के द्वार दलित समाज के लिए खुलते हैं तब भी तरह-तरह के प्रपंच रचकर दलित समाज को शिक्षा से दूर रखने का प्रयत्न किया जाता है। दलित के लिए शिक्षित होने का मतलब था ब्राह्मणवादी व्यवस्था के वर्चस्व का टूटना।सवर्ण समाज से दलित समाज की मुक्ति शिक्षा में ही निहित थी । दलित की अशिक्षा, उसकी गरीबी और उसके भोलेपन का लाभ उठाकर गांव का उच्चवर्ग दलित समाज को कर्ज देता है और बदले में मनमाना ब्याज वसूल करता है। फलतः दलित समाज जीवनपर्यंत ब्याज ही चुकाता रह जाता है लेकिन मूल कभी खत्म नहीं होता। पच्चीस चौका डेढ़ सौ कहानी गांव में होने वाले ऐसे ही शोषण को बेनकाब करती है। इस कहानी के मूल पात्र सुदीप के पिता हैं। सुदीप के पिता गांव के चौधरी से सौ रूपये कर्ज लेते हैं और अपनी पत्नी के रोग मुक्त होने पर चार महीने बाद जब वह चौधरी के पास जाते हैं तब चौधरी उन्हें समझाते हुए कहता है- "सौ रूपये पर हर महीने पच्चीस रूपये ब्याज के बनते हैं। चार महीने हो गए। ब्याज-ब्याज के हो गए पच्चीस चौका डेढ़ सौ तू अपना आदमी है तेरे से ज्यादा क्या लेणा। डेढ़ सौ में से बीस रूपये कम कर दे। बीस रूपये तुझे छोड़ दिए। बचे एक सौ तीस। चार महीने का ब्याज। एक सौ तीस अभी दे दे। बाकी रहा मूल जीभ होगा दे देणा। महीने के महीने ब्याज देते रहना"।[9]

चौधरी सुदीप के पिता को पच्चीस चौका डेढ़ सौ के बदले डेढ़ सौ का हिसाब इतना बखूबी से समझाते हैं कि सुदीप के पिता के दिमाग में यह बात बैठ जाती है कि पच्चीस चौका डेढ़ सौ होता है। चौधरी के छलावे को समझ पाना उसके बूते की बात नहीं थी। ऊपर से चौधरी अपनी उदारता दिखाने के लिए बीस रूपये कम भी कर देते हैं, जिससे सुदीप के पिता चौधरी को भलमानस समझ बैठते हैं। एक दिन सुदीप जब पहाड़े याद कर रहा होता है और जब वह पच्चीस चौका सौ दोहराता है तब सुदीप के पिता उसे टोकते हुए कहते हैं कि पच्चीस चौका सौ नहीं डेढ़ सौ होता है। सुदीप उन्हें बार-बार समझाने की कोशिश करता है कि पच्चीस चौका सौ होता है, तो वह मानने को तैयार नहीं होते। वह सुदीप से कहते हैं--- "तेरी किताब में गलत बी तो हो सके---- नहीं तो क्या चौधरी झूठ बोलेंगे। तेरी किताब से कहीं ठाड़डे (बड़े) आदमी है चौधरी जी उनके घोरे (पास) तो ये मोट्टी-मोट्टी किताबें हैं---- वह तो तेरा हेड मास्टर है वो बी पांव छुए है चौधरी जी के फिर भला वह गलत बतावेंगे----- मास्टर से कहना, सही सही पढ़ाया करें।[10]

सुदीप के पिता को लगता है कि किताब, मास्टर सब गलत हो सकते हैं लेकिन चौधरी जैसा भला व्यक्ति गलत नहीं हो सकता। सुदीप का बालमानस अपने पिता, मास्टर फूल सिंह और किताब के बीच में उलझ जाता है। उस समय तो वह अपने पिता को समझा नहीं पाता परंतु शिक्षा के बाद जब वह कर्म क्षेत्र में दाखिल होता है और उसे प्रथम तनख्वाह मिलती है, तो वह तनख्वाह लेकर सीधे गांव आता है और पच्चीस-पच्चीस की चार ढ़ेरिया बनाकर उन्हें अपने पिता को गिनने को कहता है परन्तु उसके पिता को बीस के आगे गिनना नहीं आता था, सुदीप उनकी मदद करता है और काफी कोशिश के बाद उन्हें समझा पाता है कि पच्चीस चौका सौ होता है। आखिरकार जब सुदीप के पिता असलियत से वाकिफ होते हैं तब चौधरी के उदार व्यक्तित्व का मुखौटा उनके सामने से हट जाता है और एक शोषकधारी चौधरी का रूप उनके सामने आ खड़ा होता है। चौधरी की असलियत सामने आने पर उनका मन चौधरी के प्रति एक गहरी वितृष्णा से भर उठता है और उनका मन विद्रोही होता है। इस तरह यह कहानी ब्राह्मणवादी व्यवस्था के उस रूप को सामने लाती है। जिसमें दलित समाज को शिक्षा से दूर रख कर सदियों तक उनका शोषण किया गया।

'यह अंत नहीं कहानी में विद्रोह की चरम अवस्था देखी जा सकती है। यह कहानी स्त्री के विद्रोह पर आधारित है। गांव के जमीदार का लड़का बिरमा को छेड़ता है। लेकिन बिरमा उसे मार कर भाग जाती है बावजूद इसके वह चुप नहीं रहते बल्कि उसे सबक सिखाने के लिए विद्रोह करती है, हालांकि इस विद्रोह में उसकी जीत नहीं होती लेकिन बिरमा इसे शुरुआत समझ कर फिर से विद्रोह के लिए खड़ी हो उठती है बिरमा ने अपने साहस के कारण सचिंदर से अपने आप को बचा तो लिया लेकिन चूंकि ब्राह्मणवादी व्यवस्था के पोषक तत्व हर जगह विद्यमान हैं अतः उसे कई बार बेइज्जत होना पड़ता है। थाने में जाने पर इंस्पेक्टर कटाक्ष करते हुए कहता है- "छेड़खानी हुई है बलात्कार तो नहीं हुआ... तुम लोग बात का बतंगड़ बना रहे हो । [11]

वहीं गांव के लोग जो आजीवन शोषण का शिकार होते आए " हैं, शोषित होना ही उनकी नियति बन गई है, वे लोग भी बिरमा को ही दोष देते हैं। धर्मों के हां में हां मिलाते हुए रामजी दास भी बोलने लगा- "यह शरीफ बहू बेटियों के लक्षण ना है। मर्दों से सिर्फ फुठौल करके ही चैन मिलेगा। [12] इसी प्रकार जब बिरमा किसना के साथ पंचायत में अर्जी देती है तो अर्जी देखते ही जैसे भूचाल आ जाता है अर्जी देखते ही तेजमान भड़क उठा-"भंगी चमारों की यह हिम्मत । [13] अंततः बिरमा को न्याय नहीं मिलता और वो लोग गांव से भी अलग-थलग हो जाते हैं लेकिन अब उनका स्वाभिमान जाग गया था पंचायत में उनकी हार हो जाने पर भी बिरमा निराश नहीं होती बल्कि अपने भाई और उसके दोस्तों को संबोधित करते हुए कहती है- "इस हार पर मुंह क्यों लटकाते हो यह अंत ना है.... तुम लोगों ने

मेरे विश्वास कू जगाया है... इसे मरने मत देना, सभी ने मिलकर कहा न बिरमा ... यह अंत नहीं है... तुमने हमें ताकत दी है हार को जीत में बदलेंगे, लोगों में विश्वास जगाकर, ताकि फिर कोई बिरमा मोहरा न बने [14] बिरमा उक्त कथन के माध्यम से अपने भाई और उसके दोस्तों से प्रज्वलित विद्रोह की अग्नि को बुझने नहीं देती। उसे और भड़काना चाहती है उसमें उम्मीद जगाती है। शोषण से कमजोर न हो कर इसके खिलाफ एकजुट होकर विद्रोह का बिगुल बजाती है।

दलित उत्पीड़न की एक अन्य पहलू को वाल्मीकि जी ने 'जंगल की रानी कहानी के माध्यम से व्यक्त किया है। जंगल की रानी कहानी में डिप्टी साहब कमली की इज्जत लूटना चाहते थे लेकिन कमली विद्रोह करती है और एक वीरांगना की भांति लड़ते हुए मारी जाती है। कमली पुरुष के पंजों के नीचे दबी चीखी यहां तक की जान भी खो बैठे मगर आन बचाकर । वाल्मीकि जी इस कहानी के माध्यम से दलितों के मन में पनप रहे आक्रोश को व्यक्त करते हैं जो जान तो गाँव सकते हैं पर शोषण नहीं सहन करेंगे खासकर स्त्रियां क्योंकि ब्राह्मणवादी व्यवस्था के अंदर सबसे अधिक शोषित दलित स्त्रिया ही हैं।

'मुंबई कांड' एक ऐसे दलित व्यक्ति की व्यथा को सामने लाती है जो सामाजिक विभेद से त्रस्त होकर विद्रोही हो उठता है हालांकि उसका विद्रोह मानसिक धरातल तक ही सीमित रहता है। यह कहानी एक ऐसे व्यक्ति की व्यथा को सामने लाती है जो दलितों के प्रति समाज की संवेदनशून्यता को देख कर आहत हो उठता है। अपने दफ्तर में भी वह दलित होने के कारण कटाक्ष और व्यंग्य का सामना करता है । राजनीतिक और सामाजिक स्थिति से वह इतना विक्षुब्ध हो उठता है कि धीरे-धीरे उसका मन बागी हो जाता है । उसमें विद्रोह के अंकुर जन्म लेते हैं लेकिन कहानी का नायक सुमेर नकारात्मक विद्रोह की गिरफ्त से मुक्त भी हो जाता है। वह मानता है कि अंबेडकर का रास्ता घृणा और नफरत का नहीं हो सकता।

'मुंबईकांड' कहानी में मुंबई में डॉक्टर अंबेडकर की मूर्ति को अपमानित किया गया था और फिर अंबेडकर समर्थकों पर गोली चलाई गई थी । इस घटना से सुमेर बहुत आहत था हालांकि वह मुंबई से बहुत दूर था फिर भी उस रात वह ठीक से सो नहीं पाया था ।रह-रह कर मुंबई में मारे गए लोगों के रक्तरंजित चेहरे उसके सामने आ रहे थे। पुलिस फायरिंग के बाद की चीखपुकार वह अपने भीतर साफ-साफ सुन रहा था। इसी जद्दोजहद में मुंबई कांड का विरोध करने का विचार उसके मन में आया। विरोध करने के लिए उसने नगर में लगी किसी मूर्ति को अपमानित करने का विचार करता है ताकि विरोध की अनुगूंज दूर तक सुनाई पड़े। अंततः वह नगर में लगी एक गांधीमूर्ति को अपमानित करने का विचार करता है लेकिन ऐन वक्त पर उसे एहसास हुआ कि वह गलत कर रहा है। वह जो करने जा रहा है वह अंबेडकर का रास्ता नहीं है- "जैसे ही कदम आगे बढ़ाया उसके मस्तिष्क में एक विचार कौधा । क्षणभर के लिए उसे लगा जैसे विद्युत तरंगे उसके जिस्म में तेर गई हैं। वह ठिठक गया,अरे में यह क्या कर रहा हूँ। कुछ गांधी को बापू कहते हैं और कुछ अंबेडकर को बाबा, वहां बाबा कहने वाले मारे गए, यहां बापू कहने वाले मारे जा सकते हैं । बाबा कहने वालों पर भी गाज गिर सकती है, जो भी हो मारे तो निर्दोष ही जाएंगे [15]

इस प्रकार इस कहानी में सामाजिक भेदभाव के कारण सुमेर का मन आहत हो उठता है और वह विद्रोही बन जाता है लेकिन अंततः वह अपने आप को संभाल लेता है। 'मुंबईकांड' कहानी के विषय में ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने एक साक्षात्कार में कहते हैं- 'दलित साहित्य प्रतिरोध का साहित्य नहीं है, वह तो समाज में मानवीय मूल्य, सरोकारों, मनुष्य की स्वतंत्रता, बंधुता समता का पक्षधर है वह प्रतिशोध में विश्वास नहीं करता। दलित डॉ. अंबेडकर, बुद्ध, फुले की मानवीय पक्षधरता को अपना आदर्श मानता है, फिर वह प्रतिशोध की बात कैसे कर सकता है। इसी विचार को लेकर मैंने 'मुंबईकांड' कहानी लिखी । [16]

उपयुक्त कहानियों के माध्यम से वाल्मीकि जी ने दलित समाज के शोषण और शोषण के विरुद्ध विद्रोह को विविध रूप में पेश किया है। दलित समाज के शोषण का मूल आधार ब्राह्मणवादी व्यवस्था है। इस व्यवस्था में शोषण का कोई एक रूप नहीं बल्कि अनेक रूप विद्यमान रहे हैं। शोषण की विविधता को वाल्मीकि जी ने अपनी कहानियों में उतारा है। इन कहानियों में दलित समाज की शोषण और उसके खिलाफ विद्रोह ही नहीं दिखता बल्कि सवर्ण समाज की क्रूरता और संवेदनशून्यता भी साफ झलकती है। सामाजिक भेदभाव से संबंधित कहानियों में वाल्मीकि जी ने लगातार ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर प्रहार किया है और अपने पात्रों द्वारा विद्रोह करवाया है। साथ ही सवर्ण समाज के उस वर्ग का भी स्वागत किया है जो जाति व्यवस्था के खात्मे में से जुड़ा हुआ है। 'सपना' कहानी में ऋषि ब्राह्मण होकर भी ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह करता है। 'सलाम' कहानी का कमल अपने मित्र हरीश का साथ देता है, 'ब्रह्मास्त्र' कहानी में अरविंद नेथानी ऐसे ही पात्र हैं।

हिंदी के दलित कहानीकारों में सूरजपाल चौहान का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके कुल तीन कहानी संग्रह हैं- हैरी कब आएगा (1999), नया ब्राह्मण (2009) और धोखा (2011)। 'हैरी कब आएगा में कुल चौदह कहानियां है जबकि नया ब्राह्मण कुल सात कहानियों का संग्रह है और 'धोखा' में कुल चौबीस कहानियां संकलित हैं।

सूरजपाल चौहान की कहानियां उन दलितों की यातना संघर्ष और जिजीविषा की कहानियां हैं जो सवर्णों द्वारा बार-बार और विभिन्न प्रकार से उत्पीड़ित, उपेक्षित किए जाने के बावजूद अमानवीयता और अन्याय के समक्ष झुकते नहीं है बल्कि निरंतर संघर्ष करते हैं। इनकी कहानियां दलितों की चेतना में आ रहे बदलाव की सार्थक अभिव्यक्ति है । इनके कहानियों के पात्र ब्राह्मणवादी व्यवस्था का खुलकर विद्रोह करते हुए नजर आते हैं जिसे हम 'परिवर्तन की बात','टिल्लू का पोता, छूत कर दिया', 'अंगूरी, साजिश' आदि कहानियों में देख सकते हैं । कुल मिलाकर दलित समाज पर होने वाले अत्याचार, उनके विरुद्ध सुनियोजित षड्यंत्र और फिर दृढ़ता से इन सभी का सामना करना, व्यवस्था परिवर्तन के लिए संघर्ष, अपनी अस्मिता बचाने के लिए मरने-मारने जैसे ज्वलंत सामयिक विषयों की अभिव्यक्ति करने में सूरजपाल चौहान ने सफलता पाई है।

'परिवर्तन की बात' कहानी में रघु ठाकुर की गाय मरने पर वह चमारों की बस्ती में आकर किसना को मरा जानवर उठाने के लिए बुलाता है लेकिन किसना और साथ ही गांव के सभी चमार मरा पशु उठाने से इंकार कर देते हैं। किसना दरोगा के सामने कह देता है- “हम दूसरा अन्य कोई भी काम कर अपना पेट भर लेंगे, लेकिन मरा जानवर नहीं उठाएंगे" |[17]

कहानी में नायक किसना और उसके सहयोगियों के माध्यम से समाज में आए जागृति को दर्शाया गया है। दलितों में सम्मान और स्वाभिमान से जीने की भावना विकसित हो रही है और वे गंदे और घृणित पेशों को त्याग कर सम्मानजनक कार्य करने की ओर बढ़ रहे हैं। दलितों के प्रति छुआछूत की भावना के पीछे का मूल कारण यह है कि दलित मैला उठाने, मल-मूत्र साफ करने, पशु की खाल

निकालने, चमड़ा रंगने और गंदगी खाने फैलाने वाले सूअर पालने का काम करते हैं। शिक्षा से आई चेतना के फलस्वरूप दलित लोग इन पेशों से मुक्त होना चाहते हैं तथा सम्मानजनक समझे जाने वाले दूसरे कार्यों को अपनाने के प्रति सचेत एवं सक्रिय हुए हैं। कहानी का नायक किसना भी सदियों से चली आ रही व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करता है और इस काम को न करने के लिए किसना तथा गांव के अन्य चमार मरने- मारने के लिए भी तैयार हो जाते हैं। यह कहानी सूरजपाल चौहान के एक अत्यंत सशक्त कहानी है जो इस बात को रेखांकित करती है कि दलितों को गुलामी से मुक्ति का दंश भी झेलना पड़ता है "सुबह होने पर किसना देखता है कि ठाकुर ने चमार बस्ती के चारों ओर कांटेदार तारों की मजबूत बाड़ खींच दी है। चमारों के आने-जाने का रास्ता ठाकुरों की जमीन से होकर जाता था । रघु ठाकुर हाथ में लट्ठ लिए दूर खड़ा कह रहा था, सालो, समय परिवर्तन की बात करते हो। हम देखते हैं तुम्हारा समय कैसे बदलता है। अब घरों में ही हगो और मूतो।"[18]

'साजिश' कहानी का नायक नत्थू ट्रांसपोर्ट के लिए लोन प्राप्त करना चाहता है किंतु सवर्ण बैंक मैनेजर रामसहाय उसे बार-बार पिगरी फार्म के लाभ बताकर पिगरी फार्म खोलने की सलाह देता है- ट्रांसपोर्ट के काम में कई प्रकार के लफड़े हैं, फिर तुझे इस काम का कोई अनुभव भी नहीं है। यह काम तो बड़े-बड़े व्यापारियों का है। तू पढ़ा-लिखा है, तू पिगरी लोन हेतु फॉर्म भरकर क्यों नहीं देता। [19]

इस तरह नत्थू पिगरी लोन के लिए फॉर्म भरकर घर वापस आकर अपनी पत्नी शांता को बताता है। शांता बैंक मैनेजर की चाल को समझते हुए नत्थू को समझाती है। शांता की बातों से नत्थू जैसे सोते से जाग गया हो, दोनों ने अपने टोले- मुहल्ले के युवकों से बात करके एक सभा बुलाई और बैंक मैनेजर द्वारा दलित युवकों को केवल पिगरी लोन देकर उन्हें पुश्तैनी धंधे में रखने के साजिश पर प्रकाश डाला और मनचाहे पेशे के लिए कर्ज की सुविधा के लिए बैंक पर धरना देने की तिथि भी निर्धारित गई। निर्धारित तिथि पर भीड़ को देख कर बैंक मैनेजर शर्मा के हाथ-पांव फूल जाते हैं और वह मनचाहा लोन देने के लिए बाध्य होता है।

'साजिश' कहानी में लेखक ने हिंदू मानसिकता की साजिश का पर्दाफाश किया है जो दलितों को असम्मानजनक पुश्तैनी पेशों में फंसाए रखना चाहते हैं, चाहे वह उच्च शिक्षा प्राप्त ही क्यों न किया हो, लेकिन अब दलितों की अपनी सोच बनी है और वे एकजुट होकर इसके खिलाफ विद्रोह करते हैं।

इस कहानी पर टिप्पणी करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकी लिखते हैं- "दलित यदि अपने व्यवसाय में कुछ बदलाव लाना चाहे, तो यह तंत्र उसे घसीट कर वहीं डाल देता है। रामसहाय बहुत ही चालाकी से नत्थू को सलाह देता है। तंत्र की ये मनोगत स्थितियां दलितों की यथास्थिति बनाए रखने के लिए सक्रिय होती है। [20]

'टिल्लू का पोता' कहानी सोनपुर गांव की है। हरीसिंह कानपुर में जनरल मैनेजर है। एक विवाह में अपनी पत्नी कमला और बच्चों के साथ गांव सोनपुर जाता है, जहां कमला सवर्ण व्यक्ति द्वारा अपमान के साथ पानी पिलाए जाने को स्वीकार न कर प्यासे रहना स्वीकार करती है। दरअसल हरिसिंह चमार जाति का है और सवर्ण व्यक्ति को जब पता चलता है कि वह चमार है तो कहता है- " अरे भगनिया, नेक पीछे हटके पानी पी, यह शहर ना है गांव है, मारे लठिया के कमर तोड़ दई जाएगी। सारे (साले) भंगिया चमार के शहर में जाकै नए-नए लत्ता (कपडा) पहर के गांव में आ जात हैं। कुछ पता न चलतु किजे भंगिया चमार के हैं कि नाय(नहीं)" [21]

सवर्ण व्यक्ति की यह बात सुनकर कमला आक्रोश से भर जाती है। उसने स्वयं और बच्चों को प्यासे रखना बेहतर समझा बजाए अपमानित होकर प्यास बुझाने से। इस कहानी में लेखक ने एक ओर कमला के माध्यम से दलितों में उपजे स्वाभिमान को दर्शाया है जहां सवर्ण व्यक्ति द्वारा अपमानित होने पर कमला विद्रोह कर उठती है, वहीं कहानी के प्रारंभ में अपने मन की भड़ास निकालने के लिए लेखक ने हरीसिंह के चपरासी को सवर्ण के रूप में चित्रित किया है जो उसके सामने "हां साब, हां साब" [22] करते हुए उसे पानी पिलाता है।

पारंपरिक सांस्कृतिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह

"निजी तौर पर मैं खुल्लम-खुल्ला कहना चाहता हूँ कि मैं नहीं मानता कि इस देश में किसी विशेष संस्कृति के लिए कोई जगह है, चाहे वह हिंदू संस्कृति हो, मुस्लिम संस्कृति या कन्नड़ संस्कृति अथवा गुजराती संस्कृति। ये ऐसी चीजें हैं जिन्हें हम नकार नहीं सकते, पर उनको वरदान नहीं मानना चाहिए, जो हमारी निष्ठा को भी डिगाती है और हमें अपने लक्ष्य से दूर ले जाती है। यह लक्ष्य है, एक ऐसी भावना को विकसित करना कि हम सब भारतीय हैं। " [23]

"जिस अपने इतिहास और संस्कृति का अभिमान हम करते हैं, वह हमें एक साधारण मनुष्य जैसा जीवन ही बिताने नहीं देना चाहती। खान-पान, रहन-सहन, शादी-विवाह, स्वास्थ्य और भाईचारा सभी में वह हमें दुनिया की नजर में जलील बनाना चाहती है। हमारे लिए सबसे अच्छा यही है कि अपने इतिहास को फाड़कर फेंक दे और संस्कृति से अपने को वंचित समझकर दुनिया की और जातियों से फिर क, ख, ग पढ़ना सीखें" [24]

दलित कहानियों में पारंपरिक सांस्कृतिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह का अध्ययन करते समय हमारी पहली जिज्ञासा यह है कि पहले हम यह जाने कि संस्कृति क्या है ? उस संस्कृति के आयाम क्या है ? क्या कोई दलित संस्कृति भी है ? अंततः यह जानना कि दलित साहित्यकारों का पारंपरिक सांस्कृतिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह क्यों और कैसे उपजा और उस विद्रोह का स्वरूप क्या है?

संस्कृति का एक अभिन्न अंग धर्म है। धर्म संस्कृति के अनेक आयामों में से एक है। धर्म अंदर से अपनाने, आत्मसात करने और आचरण में उतारने की चीज है, जबकि संस्कृति संपूर्ण जीवन शैली का नाम है। भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थों का उल्लेख मिलता है- 1. धर्म 2.अर्थ 3. काम और 4. मोक्षा धार्मिक दृष्टि से देखें तो दलितों का अपना कोई धर्म अस्तित्व में नहीं है। दलित वर्ग जिन धर्मों में पाए जाते हैं, वह हैं हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, इसाई धर्म और कुछ इस्लाम में। हिंदू धर्म और द्रविड़ संस्कृति से दलित अपने आप को ऐतिहासिक दृष्टि से जोड़ते हैं लेकिन समाज में व्याप्त अस्पृश्यता, हिंदू धर्म की कट्टरता व घृणा के व्यवहार के कारण तथा समाज से बहिष्कृत होने के कारण कभी वे इस्लाम, कभी इसाई तो कभी बौद्ध धर्म के शरण में आते हैं। इस प्रकार भारतीय दलित कभी हिंदू संस्कृति में, कभी इस्लामिक संस्कृति, कभी क्रिश्चियन, तो कभी बौद्ध संस्कृतियों में पाए जाते हैं। दलितों का स्वतंत्र रूप से कोई धर्म या संस्कृति चिन्हित नहीं की गई है लेकिन एक बात सिद्ध है कि अस्पृश्यता,कठोरता, शोषण व घृणा के व्यवहार के कारण दलित हिंदू

धर्म छोड़कर अन्य धर्मों का आश्रय लेने लगे और धीरे-धीरे हिंदू धर्म में व्याप्त सांस्कृतिक मान्यताओं का बहिष्कार करने लगे जो मूलतः शोषण और भेद पर आधारित थे।
रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय में धार्मिक विद्रोह की पड़ताल की है- "विद्रोह बगावत या क्रांति कोई ऐसी चीज नहीं होती जिसका विस्फोट अचानक होता हो। घाव फूटने से पहले बहुत काल तक पकता रहता है, विचार भी, चुनौती लेकर खड़े होने से पहले, वर्षों तक अर्ध-जागृत अवस्था में फैलते रहते हैं। वैदिक धर्म पूर्ण नहीं है, इसका प्रमाण उपनिषदों में ही मिलने लगा था और, यद्यपि वेदों की प्रमाणिकता में उपनिषदों ने संदेह नहीं किया, किंतु वैदिक धर्म के काम्य, स्वर्ग को अयथेष्ट बताकर वेदों की एक प्रकार की आलोचना उपनिषदों ने ही शुरू कर दी थी । वेद सबसे अधिक महत्व यज्ञ को देते थे । यज्ञों की प्रधानता के कारण समाज में ब्राह्मणों का स्थान बहुत प्रमुख हो गया था। इन सारी बातों की समाज में आलोचना चलने लगी और लोगों को यह संदेह होने लगा कि मनुष्य और उसकी मुक्ति के बीच ब्राह्मण का आना सचमुच ही ठीक नहीं है। आलोचना की ऐसी प्रवृत्ति ने बढ़ते-बढ़ते आखिर ईसा से छह सौ वर्ष पूर्व तक आकर वैदिक धर्म के खिलाफ खुले विद्रोह को जन्म दिया, जिसका सुसंगठित रूप जैन और बौद्ध धर्म में प्रकट हुआ।" [25]
जैन और बौद्ध धर्म को दिनकर जी ने वैदिक धर्म के खिलाफ विद्रोह कहा है। डॉ रामजी उपाध्याय का मत है कि- "भारतीय संस्कृति में धर्म शब्द की अभिव्यक्ति अतिशय व्यापक रही है। धर्म के अंतर्गत प्रायः उन नियमों का समावेश किया गया है जिनसे व्यक्ति के अभ्युदय के साथ ही समाज की आधिभौतिक और आध्यात्मिक प्रगति की संभावना हो। इस प्रकार जीवन के प्रथम श्वास से अंतिम श्वास तक के प्रत्येक क्षण में मानव किस प्रकार व्यवहार करें, अथवा उसके साथ दूसरे कैसा व्यवहार करें, यह धर्म बतलाता है। [26]
अब प्रश्न यह है कि संस्कृति को कैसे परिभाषित किया जाए। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने संस्कृति के विषय में लिखा है- "संस्कृति है क्या? शब्दकोश उलटने पर इसकी अनेक परिभाषाएं मिलती है। एक बड़े लेखक का कहना है कि 'संसार भर में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कही गई है, उनसे अपने आपको परिचित कराना संस्कृति है। एक दूसरी परिभाषा में यह कहा गया है कि- 'संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढकरण या विकास अथवा उसे उत्पन्न अवस्था है। यह 'मन विचार अथवा रूढ़ियों की परिष्कृति या शुद्धि है। यह सभ्यता के भीतर से प्रकाशित हो उठता है। इस अर्थ में संस्कृति कुछ ऐसी चीज का नाम हो जाता है जो बुनियादी और अंतरराष्ट्रीय है। फिर, संस्कृति के कुछ राष्ट्रीय पहलू भी होते हैं और इसमें कोई संदेह नहीं कि अनेक राष्ट्रों ने अपना कुछ विशिष्ट व्यक्तित्व तथा अपने भीतर कुछ खास ढंग के भौतिक गुण विकसित कर लिए हैं। [27]
ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कहानी 'सलाम के माध्यम से सवर्णों द्वारा दलितों के लिए बनाई गई सलाम की परंपरा का विरोध करते दिखाया है। गांव के पारंपरिक जीवन में सलाम एक ऐसी प्रथा या परंपरा है जिसमें दलित अपने नवविवाहित दंपत्ति को लेकर सवर्ण मालिकों के दरवाजे-दरवाजे जाकर खड़े होते हैं और बदले में सवर्ण मालिकों की ओर से घर के पुराने बर्तन भांड़े दिए जाते थे। हरीश पढ़ा-लिखा होने के कारण इस परंपरा का विरोध करता है। हरीश इस प्रथा को आत्मसम्मान तोड़ने की साजिश समझता है लेकिन गांव के बड़े बूढ़े इस प्रथा का समर्थन करते हैं। "जुम्मन की घरवाली जिन परिवारों में काम करती थी, उनमें अधिकतर रांघड़ थे। गांव-देहात के नियम-कायदे के हिसाब से हरीश को सलाम के लिए विदाई से पहले रांघड़ के दरवाजे पर जाना था। यह एक रस्म थी। जिसे न जाने कितनी सदियों से निभाया जा रहा था। [28] हरीश के पिता सलाम पर जाने से इनकार कर देते हैं- "हम सलाम पर अपने लड़के को नहीं भेजेंगे "[29] रांघड़ परिवारों से कई बार बुलावा आ चुका था, बिरादरी के बड़े-बूढ़े लोग अपने-अपने तर्क देकर ऊंच-नीच समझा रहे थे-" बाप-दादों की रीत है, एक दिन में तो ना छोड़ी जावे है। वे बड़े लोग हैं। सलाम पे तो जाणा ही पड़ेगा और फिर जल में रहकर मगरमच्छ से बैर रखना तो ठीक नहीं है और इसी बहाने कपड़ा - लत्ता, बर्तन-भांड़े भी नेग दस्तूर में आ जाते हैं। [30]
इन कथनों से स्पष्ट है कि सवर्णों ने जहां यह परंपरा दलितों को छोटा करने या उन्हें नीचा दिखाने के लिए किया है वहीं दलितों के लिए सलाम पर जाना आर्थिक मजबूरी भी है क्योंकि नेग में उन्हें कुछ सामान मिल जाएंगे जो उन जैसे गरीब मजदूर लोगों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। पुराने बड़े-बूढ़े लोगों में शिक्षा के अभाव के कारण आत्मसम्मान नहीं जगा है इसलिए वे लोग सलाम परंपरा का समर्थन कर रहे हैं और वे यह भी जानते हैं कि ऐसा नहीं करने पर बड़े लोगों के कोप भाजन बनना पड़ेगा। लेकिन हरीश शिक्षित है, स्वतंत्र विचारों का पोषक है, आर्थिक रूप से कमजोर नहीं है इसलिए वह सलाम परंपरा को मानने से इंकार करता है। हरीश ने स्पष्ट तौर पर कह दिया था- "मुझे न ऐसे कपड़े चाहिए, न बर्तन, मैं अपरिचित के दरवाजे सलाम पर नहीं जाऊंगा 1 [31]
हरीश ने जब भी किसी दूल्हा या दुल्हन को इस तरह दरवाजे दरवाजे घूमते देखता, लगता था जैसे स्वाभिमान को चिंदी - चिंदी करके बिखेरा जा रहा है। गाजे-बाजे के साथ घूमता दूल्हा निरीह जीव दिखाई पड़ता था। इसी कारण कहानी का नायक हरीश ने तीखे शब्दों में कहा- "आप चाहे जो समझे... मैं इस रिवाज को आत्मसम्मान तोड़ने की साजिश मानता हूँ यह सलाम की रस्म बंद होनी चाहिए [32] रांघड़ इसे अपना अपमान समझते हैं। कल्लू रांघड़ आकर चेतावनी दे जाता है। बावजूद इसके बिना सलाम प्रथा के ही बाराती को विदा करने की तैयारी की जाती है। नई पीढ़ी पुरानी अमानवीय प्रथाओं को ढोना नहीं चाहती। शिक्षा के फलस्वरूप उनमें जिस जागरूकता का उदय होता है, उसी का परिणाम है कि गांव में प्रचलित एक परंपरा पर हरीश ने एक हल्का-सा आघात किया था जो उसे सुकून दे रहा था। हरीश द्वारा रांघड़ों के घर सलाम पर न जाने से एक निंदनीय परंपरा टूटती है तथा निकृष्ट पारंपरिक सांस्कृतिक मान्यता के प्रति विद्रोह होता है एवं रचना में आत्मसम्मान का संचार होता है।
मोहनदास नैमिशराय ने 'कर्ज' कहानी में दलितों को मृत्यु भोज और कथित धार्मिक संस्कारों के प्रति विद्रोह तथा मृत्यु के बाद किए जाने वाले श्राद्ध की परंपरा को तोड़ते हुए दिखाया है। कहानी के नायक अशोक पर पिता के मृत्यु भोज का आयोजन करने के लिए पूरे गांव द्वारा दबाव डाला जाता है लेकिन अशोक कर्ज लेकर मृत्यु भोज करने को तैयार नहीं होता। यहां अशोक द्वारा मृत्यु के बाद किए जाने वाले भोज की परंपरा को तोड़ते हुए दिखाया गया है। अशोक शहर के खुले वातावरण में रहकर बहुत कुछ सीख गया था। अब वह एक जागरूक नौजवान था, पुराने रीति-रिवाजों से उसे कोई मोह नहीं था लेकिन उसके आसपास का वातावरण धीरे-धीरे उसके विरुद्ध होने लगा था - " गांव के बड़े बूढ़े आस-पड़ोस तथा रिश्तेदार पिता के मरने के बाद उनकी तेरहवीं करने पर बल दे रहे थे, लेकिन जब-जब भी कोई उससे इस विषय पर बात करता, उन सब की उसकी ओर से एक ही जवाब होता, वह यह सब ढोंग नहीं करेगा [33] अशोक द्वारा श्राद्ध की परंपरा न मानने के कारण पूरे गांव के लोगों द्वारा उसकी निंदा होने लगी। बस एक ही बात सर्वत्र

सुनाई पड़ती, "वह मुंहफट हो गया है शहर जाकर उसका दिमाग खराब हो गया है बाप का नाम रोशन कर रहा है पिता की आत्मा को निर्लज्ज दुख पहुंचा रहा है ऐसे कपूत को तो पैदा होते ही मर जाना चाहिए था । [34]
सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक रूप से परंपराओं के नाम पर दलितों को शिक्षित होने से रोका जा रहा है। रूढ़ीवादी लोगों को यह भय है कि कहीं दलित वर्ग उनके साथ आकर खड़ा न हो जाए। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'कहां जाए सतीश एक ऐसे दलित लड़के की कहानी है जो अपने पिता की तरह अपने पारंपरिक काम जो ब्राह्मणवादी व्यवस्था द्वारा उन पर थोपा गया है, सफाई कर्मचारी नहीं बनना चाहता। वह अपने इस पारंपरिक के काम को छोड़कर अपने उज्ज्वल भविष्य की इच्छा प्रकट करता है और परिवार के खिलाफ विद्रोह करते हुए अपना घर छोड़ देता है- "कौन से घर जाऊं... बाप का घर इसलिए छोड़ा कि वे मुझे नगर पालिका में सफाई कर्मचारी की नौकरी दिलवाना चाहते थे । वह रिटायर होने वाले हैं। वह मुझे रखवा देने के लिए भागदौड़ कर रहे थे। उन्होंने नगरपालिका के साहब से बात कर ली थी, दो हजार की बात थी जिसका इंतजाम मेरे पिताजी अपने फंड से करने की योजना बना चुके हैं। दो हजार देकर जिंदगी भर के लिए मेरे हाथ में झाड़ू आ जाएगी। वे चाहते हैं कि मैं पढ़ाई-लिखाई छोड़ कर इस नौकरी को कर लूं। साहब, मैं सफाई कर्मचारी बनना नहीं चाहता... मैं पढ़ना चाहता हूँ... जिस मोहल्ले में हम रहते हैं वहां मेरा दम घुटता है। इसलिए नहीं कि वह सब गरीब या छोटे लोग हैं बल्कि इसलिए कि जिस तरह का जीवन जीते हैं... में उससे छुटकारा पाना चाहता हूँ। वे अपनी तकलीफों के इतने आदी हो गए हैं कि वे उसे नियति मान बैठे हैं। उनके भीतर हीनताबोध जड़ें जमा चुकी हैं जिससे बाहर निकल कर ही दुनिया को देखा जा सकता है हजारों साल से मिट्टी में दबे लोहे के टुकड़े की मानिंद उनकी सोच पर भी जंग लग गया है। इस कहानी में सतीश अपना पारंपरिक पुश्तैनी काम छोड़ कर शिक्षित होकर एक अच्छा मानवीय जीवन जीना चाहता है जिसके कारण वह घर छोड़ कर भाग जाता है।

सौंदर्यशास्त्र के प्रति विद्रोह

हमें सुंदरता की कसौटी बदलनी होगी और हमें निश्चय ही विलासिता के मीनार से उतरकर उस बच्चों वाली काली रूपवती का चित्र खींचना होगा जो बच्चे को खेत की मेड पर सुला कर पसीना बहा रही है । [35] हिंदी साहित्य का सौंदर्यशास्त्र संस्कृत और पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र पर आधारित है। इसलिए उसकी कसौटियां दलित साहित्य के मूल्यांकन में अक्षम साबित होती है। [36] दलित साहित्य स्वातंत्र्योत्तर काल में नई साहित्यक धारा है। यह केवल नई ही नहीं है बल्कि इस साहित्य का स्वरूप और प्रयोजन भारतीय साहित्य की अपेक्षा भिन्न है। इसलिए रूढ़ सौंदर्यशास्त्र के आधार पर इस नयी धारा की चर्चा नहीं की जा सकती। [37]
हिंदी के दलित लेखकों ने पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र का विरोध करते हुए दलित साहित्य के लिए अलग सौंदर्यशास्त्र की जरूरत पर बल दिया है। दलित लेखक मानते हैं कि न तो परंपरागत भारतीय सौंदर्यशास्त्र और न ही पश्चिमी सौंदर्यशास्त्र की कसौटी पर दलित साहित्य को समझा और सराहा जा सकता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने यह माना है कि क्योंकि हिंदी साहित्य का सौंदर्यशास्त्र भारतीय एवं पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र पर आधारित है। जिसका मूलाधार सामंतवादी, ब्राह्मणवादी एवं पूंजीवादी है, इसलिए इसके आधार पर दलित साहित्य का मूल्यांकन संभव नहीं, जिसका उल्लेख उद्धरण दो में किया गया है। पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र के प्रतिमानों से भिन्न दलित साहित्य के लिए प्रायः सभी दलित रचनाकार अलग सौंदर्यशास्त्र की मांग करते हुए पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र के प्रति नकार और विद्रोह के भाव व्यक्त करते हैं । दलित साहित्य के लिए अलग सौंदर्यशास्त्र की आवश्यकता महसूस करते हुए दलित रचनाकार विभिन्न तर्कों द्वारा पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र के प्रति विद्रोह करते नजर आते हैं और पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र पर प्रश्न चिन्ह अंकित करते हैं। डॉ एन सिंह की धारणा है कि- "दलित साहित्य का शब्द सौंदर्य प्रहार में है, सम्मोहन में नहीं। वह समाज और साहित्य में शताब्दियों से चली आ रही सड़ी-गली परंपराओं पर बेदर्दी से चोट करता है। वह शोषण और अत्याचार के बीच हताश जीवन जीने वाले दलितों को लड़ना सिखाता है। वह सिर पर पत्थर ढ़ोनेवाली मजदूर महिला को उसके अधिकारों के विषय में बतलाता है। उसे धर्म की भूलभुलैया से निकालकर शोषण से मुक्ति का मार्ग दिखाता है, उसके लिए जिस शाब्दिक प्रहार क्षमता की आवश्यकता है, वह उसमें है और यही दलित साहित्य का शिल्प सौंदर्य है। [38]
दलित साहित्य की अंतर्चेतना में वेदनामूलक संघर्ष भाव की प्रधानता है जो यातना से उपजी है। राजेंद्र यादव कहते हैं- "साहित्य जिन तथ्यों से अमर, स्थाई या सार्वभौमिक होता है,उनमें तीन मुझे सबसे प्रमुख लगते हैं- संघर्ष, यातना और विजन.... राजेंद्र यादव का मानना है कि जो नया सौंदर्यशास्त्र बनेगा, वह संघर्ष से शुरू होगा, उस यातना से शुरू होगा, चाहे वह उसका रियलाईजेशन करने अथवा उस यातना को, उसकी तकलीफ को, उसके भेद रूप को समझने के रूप में हो, और उसके बाद बदलने की मानसिकता के रूप में हो, जिसे हम संघर्ष कह सकते हैं। तीसरा एक स्वप्न के रूप में होगा, हमें करना क्या है? हमें समानांतर सौंदर्य शास्त्र देना है, वैकल्पिक समाज बनाना है, यह सारा संघर्ष साहित्य में भी है और समाज में भी। [39]
ओमप्रकाश वाल्मीकि यह मानते हैं कि- " कला और साहित्य में सौंदर्य बोध जहां संस्कारगत होता है, वहीं परिवेशगत भी। पसंद-नापसंद, जीवन मूल्यों का आधार बनती है। दलित साहित्य सिर्फ एक साहित्यिक आंदोलन भर नहीं है। दलित साहित्य की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक आकांक्षाएं साहित्य की भाषा में व्यक्त हो रही है । इसलिए वह हिंदी की मुख्यधारा के उस सौंदर्य शास्त्र के वर्चस्व से मुक्त है, जो संस्कृत के काव्यशास्त्र से जुड़ा है। [40]
प्रेमचंद ने ऐसी स्थितियों को बहुत पहले ही भांप लिया था । उन्होंने यह महसूस करना शुरू कर दिया था कि साहित्य को समझने और उसके आस्वादन के लिए नए सौंदर्यशास्त्र की जरूरत है, सुंदरता की परंपरागत कसौटियां ज्यादा उपयोगी नहीं रह गई है। जबकि उस समय दलित साहित्य का उदय भी नहीं हुआ था । प्रेमचंद ने कहा था कि हमें सुंदरता की कसौटी बदलनी होगी और हमें विलासिता की मीनार से उतरकर उन बच्चों वाली काली रूपवती का चित्र खींचना होगा, जो बच्चे को खेत की मेंड पर सुलाकर पसीना बहा रही है जिसका उल्लेख उदाहरण एक में किया जा चुका है। दरअसल कला का स्वरूप समय सापेक्ष और परिवर्तनशील होता है । कला का स्वरूप असीमित और व्यापक होने के कारण उसकी निश्चित कसौटी देना संभव नहीं है। बदलती संस्कृति और समाज के साथ साहित्य भी बदलता है,तो जाहिर है कि इनके साथ-साथ साहित्य और उसके मूल्यांकन की कसौटियां भी बदलेंगी। लेकिन यदि

इनके साथ-साथ यह कसौटियां नहीं बदलती है तो साहित्य और समीक्षा दोनों का संबंध टूट जाएगा। यह जरूरी नहीं कि एक को जो सुंदर लगे वह दूसरे को भी सुंदर लगे। सुंदरता की कसौटी देश, काल और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। सुंदरता की कसौटी अपने ही समाज या संस्कृति से निःसृत होना चाहिए न कि बाहर से आरोपित| यही बात दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र पर भी लागू होती है। दलित साहित्य के सौंदर्य शास्त्र के तत्व दलित साहित्य में ही ढूंढने होंगे, न की परंपरागत प्रतिमान इसके साथ न्याय कर पाएंगे। शरण कुमार लिंबाले के अनुसार - " साहित्य की कसौटी सभी कालों में स्थिर नहीं रहती। बदलते काल के साथ साहित्य भी बदलता है और उसकी समीक्षा में भी बदलाव की संभावना होती है। रूढ़ साहित्यिक कसौटी के आधार पर नई साहित्यिक धारा का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। [41]

इस प्रकार दलित रचनाकार पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र का विरोध करते हुए नए सौंदर्यशास्त्र की आवश्यकता पर बल देते हैं, लेकिन नया सौंदर्यशास्त्र निर्धारित करना भी कोई आसान काम नहीं है। पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र का विरोध करते हुए नए सौंदर्यशास्त्र को लेकर बातें तो दलित साहित्य आंदोलन के अंतर्गत बहुत होती है और सौंदर्यशास्त्र से संबंधित ओमप्रकाश वाल्मीकि एवं शरण कुमार लिंबाले की पुस्तकें भी आई लेकिन इनमें सौंदर्यशास्त्र की चर्चा की बजाए संपूर्ण दलित साहित्य पर ज्यादा बातें हैं और उनमें भी सौंदर्य शास्त्र से संबंधित गंभीर विवेचन विश्लेषण की बजाए विभिन्न लोगों द्वारा कहा गया सौंदर्य शास्त्र संबंधी उक्ति का संकलन मात्र है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी पुस्तक दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र में इस विषय पर मात्र सात पन्ना लिखा है जिसमें दलित साहित्य के लिए अलग सौंदर्यशास्त्र के स्वरूप पर कुछ लिखा ही नहीं है। केवल विभिन्न विद्वानों की सौंदर्य शास्त्र संबंधी उद्धरण देकर छोड़ दिया है। शरण कुमार लिंबाले का प्रयास इस संदर्भ में अपेक्षाकृत बेहतर है लेकिन उनकी पुस्तक में भी दलित साहित्य के सौंदर्य शास्त्र के क्या प्रतिमान हो सकते हैं, जैसी कोई ठोस चीज निकल कर नहीं आती।

इस संदर्भ में मैनेजर पांडे के विचार भी प्रासंगिक है। उनका कहना है- कोई भी सौंदर्यशास्त्र एक दिन में नहीं बनता। प्रतिरोध और विकल्प का सौंदर्यशास्त्र तो और भी नहीं। वैसे तो हिंदी में कोई विकसित सौंदर्यशास्त्र नहीं है, और जो है उसके पीछे एक और संस्कृत के काव्यशास्त्र की लंबी परंपरा है तो दूसरी ओर पश्चिम के सौंदर्य शास्त्र का प्रभाव। पश्चिम में सौंदर्य शास्त्र का विकास कई सदियों में हुआ है। जो लोग कहते हैं कि सौंदर्य शास्त्र का जाति,वर्ग और विचारधारा से क्या लेना देना, या तो बेवकूफ है या बदमाश। सौंदर्यशास्त्र कला की अलौकिक अनुभूति नहीं है। वह कलात्मक सौंदर्य के बोध और मूल्यों का शास्त्र है, और बोध की प्रक्रिया तथा मूल्यों के निर्माण में जाति, वर्ग और लिंग से जुड़ी विचारधाराओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है. इसलिए दलित सौंदर्यशास्त्र का विकास दलित समाज,उसकी चेतना, संस्कृति, विचारधारा और दलित सौंदर्यशास्त्र के विकास पर निर्भर है, जो एक लंबी प्रक्रिया में होगा।",[42]

दलित साहित्य विद्रोह और नकार के संघर्ष से उपजा है। दलित साहित्य अभी भी अपने चरम पर नहीं पहुंचा है। हिंदी में दलित साहित्य उतना नहीं लिखा गया है। अभी भी श्रेष्ठ दलित रचनाएं आना बाकी है इसलिए इसकी रूपरेखा या विशेषताएं पूरी तरह से नहीं उभरी है, लेकिन फिर भी दलित साहित्य के सौंदर्य के कुछ पैमाने निर्धारित किए जा सकते हैं। दलित साहित्य में भाव पक्ष के साथ-साथ इसके शिल्पगत आयामों के प्रति भी सचेत होना पड़ेगा। दलित साहित्य के सौंदर्य शास्त्र संबंधी विभिन्न विद्वानों के उदाहरणों के आधार पर दलित साहित्य के सौंदर्य शास्त्र संबंधी कुछ तत्व को निरूपित किया जा सकता है जैसे समानता स्वतंत्रता, बंधुत्व, संघर्ष, बेचैनी, यातना, अनुभूति की प्रामाणिकता आदि। शरण कुमार लिंबाले लिखते हैं- जो कलाकृति अधिकाधिक दलित चेतना जागृत करेगी,वह कलाकृति सर्वश्रेष्ठ होगी ।" राजेंद्र यादव का भी मानना है कि जो नया सौंदर्यशास्त्र बनेगा वह संघर्ष से शुरू होगा। संदर्भ पाँच में उनका पूरा कथन दिया गया है।

उपसंहार

निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य का सौंदर्यशास्त्र संस्कृत और पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र पर आधारित है । इसलिए सामंतवादी और पूंजीवादी सौंदर्य दृष्टि रखने वाले संस्कृत और पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र का अनुकरण दलित साहित्यकार नहीं करते हैं। ब्राह्मणत्व की प्रधानता होने के कारण नायक धीरोंधात्त उच्च कुलोत्पन्न होता है । मगर आधुनिक कालीन साहित्य में नायक का धीरोधात्त या उच्च कुलोत्पन्न होना जरूरी नहीं। दलितों के लिए साहित्य रचना अपनी अस्मिता की तलाश है। इसलिए वे अपने साहित्य में नायक के रूप में अपने को या अपनी जाति के लोगों को ही स्वीकार करते हैं। इसके लिए वे अपनी एक अलग भाषा एक अलग शैली का प्रयोग करते हैं। प्रेमचंद जैसे श्रेष्ठ लेखक ने भी सुंदरता की कसौटी बदलने का आव्हान किया था। आज दलित साहित्य विभिन्न पड़ाओं से गुजरकर ठहराव की स्थिति में आ गया है क्योंकि अधिकांश दलित साहित्यकार चाहें वे किसी भी विधा में क्यों न हो अभी भी अतीत की दुखद स्मृतियों से उबर नहीं पाए हैं। यही वजह है कि दलित साहित्य समाज के लोगों के दुख, दीनता और असहाय स्थितियों का ही अतिरेक दिखाई दे रहा है। स्वानुभूत के नाम पर इन दलित कहानीकारों की भी स्थिति कमोबेश एक जैसी ही है। पर दलित रचनाकारों ने ब्राह्मणवादी व्यवस्था में दलितों को पिसते और विद्रोह करते दिखाया है, दलित विमर्श में दलितों का शत्रु घोषित किया जाता है ब्राह्मणवाद को, जबकि ब्राह्मणवाद के अलावा भी बहुत ऐसी समस्याएं हैं जिसको दलित लेखक अपनी रचना का विषय नहीं बना रहे हैं। दलित लेखन में मनुवादी व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह, आक्रोश, दलित व्यथा, भोगे हुए यथार्थ, सामंती आतंक, सवर्ण पुरुषों द्वारा दलित स्त्रियों का शोषण आदि विषयों को प्रमुखता से उठाया गया है। दलित रचनाकारों ने पारंपरिक साहित्य से अलग हटकर दलित अस्मिता को लेकर कलम उठाई और दलितों की यातनाएं, शोषण, संवेदनाओं, विद्रोह एवं आक्रोश को अपनी कहानियों के माध्यम से व्यक्त किया। इसमें कोई दो राय नहीं की ब्राह्मणवादी व्यवस्था के अंतर्गत दलितों का शोषण होता आ रहा है, जिसको आधार बनाकर उक्त लेखकों ने अपनी लेखनी चलाई। लेकिन अब जबकि दलित कहानी लेखन लगभग चार दशक पुराना हो चुका है दलित लेखन दोहराव की स्थिति में है और बहुत कुछ नया रच पाने में असमर्थ से दिख पड़ते हैं। इनकी रचनाओं में एक ऐसी चीख पुकार, विद्रोह आक्रोश दिखता है, जो पाठकों को आकर्षित करता है पर बदलाव का माद्दा नहीं भर पाता। दलित साहित्यकारों

को अपने कुछ स्थापित मान्यताओं और सिद्धांतों में फेरबदल करनी होगी, जिससे दलित साहित्य के व्यापक फलक का निर्माण हो सके।

संदर्भ:

1. बड़त्या, सूरज, सत्ता संस्कृति और दलित सौन्दर्यशास्त्र, अनामिका पब्लिशर्स एंड डीस्ट्रीब्यूटर्स प्रा.लि. नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010 पृष्ठ 43
2. डॅ.रमेन्द्र, ब्राह्मणवाद के विरोध में एम. एन. राय और डॉ. अंबेडकर के विचार, रमणिका गुप्ता, ज्ञानसिंह बल (संपादक) दलित दर्शन, नेहा प्रकाशन, दिल्ली संस्करण: 2009 कुल पृष्ठ संख्या 90-95, पृष्ठ 90
3. वही, पृष्ठ-90
4. उद्धृत,बल ज्ञानसिंह,दलित चिंतन के वैचारिक आयाम, रमणिका गुप्ता,ज्ञानसिंह बल (संपादक),दलित दर्शन,नेहा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण: 2009 पृष्ठ 16
5. उद्धृत, रमेन्द्र, ब्राह्मणवाद के विरोध में एम. एन. राय और अंबेडकर के विचार, रमणिका गुप्ता ज्ञानसिंह बल(संपादक)दलित दर्शन, नेहा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2009 पृष्ठ 93
6. उद्धृत,ओमवेट,गेल,दलित दृष्टि, रमणिका गुप्ता एवं अक़ील कैस (सं.) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011 पृष्ठ 32
7. वही,पृष्ठ- 35
8. वही, पृष्ठ- 35-36
9. .चौहान,सूरजपाल,दलित के लेखन ने वर्ण व्यवस्था को मजबूत ही किया है, डॉ. रामकली सरार्फ (संपादक), दलित लेखन का अन्तरविरोध, शिल्पायन, दिल्ली, संस्करण 2009, पृष्ठ- 124
10. वाल्मीकि,ओमप्रकाश,सलाम, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति 2010
11. वही, पृष्ठ- 84
12. वही, पृष्ठ- 81
13. वही, पृष्ठ- 80
14. वाल्मीकि,ओमप्रकाश,घुसपैठिये, राधाकृष्ण, नई दिल्ली पहली आवृत्ति - 2009 पृष्ठ 24
15. वही, पृष्ठ- 25
16. वही, पृष्ठ- 26
17. वाल्मीकि,ओमप्रकाश,सलाम, राधाकृष्ण, नई दिल्ली पहली आवृति 2010 पृष्ठ 58
18. वही, पृष्ठ- 59
19. शर्मा,राजमणि,दलित चेतना की कहानियां: बदलती परिभाषाएँ, वाणी प्रकशन, दिल्ली, वृत्ति 2010 पृष्ठ 127
20. चौहान, सूरजपाल हेरी कब आएगा? सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2003 पृष्ठ 38
21. वही, पृष्ठ- 23
22. वही, पृष्ठ- 38
23. मेघवाल,भागीरथ,सूरज की चिता, रमणिका गुप्ता (संपादक) दुसरी दुनिया का यथार्थ, शिल्पायन, दिल्ली, संस्करण 2012 पृष्ठ 134
24. उद्धृत, मीनू, रजत रानी, हिंदी दलित कथा साहित्य, अवधारणाएं और विधाएं, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, संस्करण 2010, पृष्ठ 227
25. सांकृत्यायन,राहुल,तुम्हारी क्षय, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-1998 पृष्ठ 6
26. सिंह, रामधारी, दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवीन संस्करण 2008 पृष्ठ 101
27. उद्धृत, मीनू, रजत रानी, हिन्दी दलित कथा साहित्य, अवधारणा और विधाएं, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स प्राइवेटलिमिटेड, दिल्ली, संस्करण: 2010 पृष्ठ 221
28. सिंह,रामधारी दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद नवीन संस्करण 2008, जवाहरलाल नेहरू प्रस्तावना से उद्धृत पृष्ठ 48-49
29. वाल्मिकी, ओमप्रकाश, सलाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2000 पृष्ठ 10
30. वही पृष्ठ 16
31. वही पृष्ठ 1
32. वही पृष्ठ 16
33. वही पृष्ठ 17
34. चौहान, सूरजपाल संपादक हिंदी के दलित कथा कारों की पहली कहानी अनुभव प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 2004 पृष्ठ 27
35. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, नवीन संस्करण 2001 पृष्ठ 21
36. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृत्ति : 2009 पृष्ठ 45
37. लिंबाले, शरण कुमार, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण : 2005 पृष्ठ 116
38. वाल्मीकि, ओम प्रकाश, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृत्ति : 2009 पृष्ठ 48
39. वही कुल पृष्ठ 45-47 पृष्ठ 46
40. वही, पृष्ठ- 51
41. लिंबाले, शरण कुमार, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण : 2005 पृष्ठ 108
42. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृत्ति : 2009 पृष्ठ 51-52